International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
Received: 05-12-2020; Accepted: 24-12-2020; Published: 13-01-2021
www.educationjournal.org
Volume 6; Issue 1; 2021; Page No. 07-13

भारतीय न्यायिक व्यवस्था और न्यायिक पुनर्विलोकनः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दर्शन राम
शोधार्थी, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान, भारत

सारांश
यह पत्र संवैधानिक और वैधानिक न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र और न्यायाधीशों की नियुक्ति, कार्यकाल और निष्कासन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए भारतीय न्यायिक प्रणाली और न्यायालय पदानुक्रम का परिचय प्रदान करता है। यह वैकल्पिक विवाद समाधान के रूपों का वर्णन करता है जो हाल के दशकों में उभरे हैं, आंशिक रूप से अदालत प्रणाली में देरी का मुकाबला करने के लिए, और अनौपचारिक विवाद समाधान निकाय जो पारिवारिक विवादों को ध्यान में रखते हैं, जैसे कि शरिया अदालतें। अदालत के प्रणाली में देरी के विवादास्पद मुद्दों, जनहित याचिका और भारत के सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों में नियुक्तियों पर चर्चा की गई है ।
भारतीय न्यायिक प्रणाली दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में सबसे मजबूत संस्थान है। इसका उद्देश्य निर्दोषों को न्याय दिलाना और दोषियों को दंडित करना है। फिर भी हजारों मामलों की लम्बित गंभीर चिंता का विषय है। न्यायाधीशों और बुनियादी ढांचे की कमी को उसी के प्रमुख कारणों में से एक के रूप में रेखांकित किया गया है। लंबे समय तक देरी के लिए निश्चित रूप से भ्रष्टाचार और परामर्श–पक्ष विलंब अन्य प्रमुख कारण हैं। इस तरह की देरी को कम करने के लिए, अधिक जवाबदेह और पारदर्शी न्यायिक प्रणाली की आवश्यकता है। इस पत्र का उद्देश्य खंड श्रृंखला प्रणाली के अनुप्रयोग के साथ भारतीय न्यायिक प्रणाली में मौजूदा कमियों को दूर करना है। कागज उपलब्ध विकल्पों के साथ अदालत में आम आदमी द्वारा सामना किए गए नमूना मुद्दों पर चर्चा करता है और विकल्प के रूप में खंड श्रृंखला समाधान प्रदान करता है। यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत रूप से और दोषियों के लाभ के लिए न्यायिक प्रणाली का फायदा उठाने के लिए अधिवक्ताओं, एजेंटों और अदालत के अधिकारियों को सीमित करता है। प्रस्तावित प्रणाली भारतीय न्यायिक प्रणाली में आम आदमी के विश्वास को वापस लाने में मदद करेगी।

मूल शब्दः भारतीय न्यायिक प्रणाली, न्यायिक समीक्षा, भारतीय न्यायपालिका

प्रस्तावना
न्यायपालिका लोकतंत्र के महत्वपूर्ण स्तंभों में से एक है। भारत में न्यायिक प्रणाली या न्यायालय प्रणाली में सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, जिला न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालय और संवैधानिक न्यायालय शामिल हैं। संविधान भारत में कानून का सर्वोच्च स्रोत है और इन कानूनों को न्यायिक प्रणाली या इन अदालतों द्वारा लागू किया जाता है, जिन्हें भारतीय संविधान का प्रहरी माना जाता है। अदालत निर्णय ले सकती है और ये निर्णय नागरिकों के साथ–साथ सरकार के लिए भी बाध्यकारी हैं। न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों को भूमि का कानून माना जाता है।
भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ और इसने सर्वोच्च न्यायालय को भारत में अपील के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में घोषित किया, जिसमें कंपनी अदालतों या ब्रिटिश भारत की अदालतों की प्रथाओं और विशेषताओं को बरकरार रखा गया था। भारतीय संविधान के भाग 5 में अध्याय 5 (अनुच्छेद 124–147) केंद्रीय न्यायपालिका से संबंधित है, यानी सर्वोच्च न्यायालय और भाग 6 में अध्याय 5–6 (अनुच्छेद 214–237) क्रमशः राज्य न्यायपालिका यानी उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित है। संविधान न्यायालय में कार्यरत, शक्तियों, क्षेत्राधिकार और नियुक्तियों की गणना करता है।
हमारा संविधान एक स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली का भी प्रावधान करता है जिसका अर्थ है कि अन्य दो शाखाएँ यानी विधायी और अधिकारियों का न्यायपालिका पर कोई सीधा नियंत्रण नहीं है। स्वतंत्र न्यायपालिका का अर्थ है कि न्यायपालिका के न्यायाधीश और संस्थान बाहरी या आंतरिक रूप से किसी भी तरह के प्रभाव से मुक्त हैं। न्यायपालिका की स्वतंत्रता सरकार की विभिन्न शाखाओं के भीतर जांच और संतुलन की व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। लोगों को अपने देश की न्याय वितरण प्रणाली में विश्वास होना चाहिए और यह विश्वास एक शक्तिशाली और स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली की स्थापना के माध्यम से आश्वस्त किया जा सकता है।

प्राचीन भारत में न्यायिक प्रणाली
भारत में दुनिया की सबसे पुरानी न्यायपालिका है। किसी भी अन्य न्यायिक प्रणाली में अधिक प्राचीन या अतिरंजित वंशावली नहीं है। लेकिन प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणाली का वर्णन करने से पहले मुझे एक चेतावनी देनी चाहिए। पाठक को कुछ ब्रिटिश लेखकों द्वारा भारतीय न्यायशास्त्र की प्राचीन गलत व्याख्या और प्राचीन भारत की कानूनी प्रणाली को अस्वीकार करना चाहिए। हेनरी मेयने ने प्राचीन भारत की कानूनी प्रणाली को ''क्रूर असमानताओं का एक तंत्र'' बताया।
भारत में अंग्रेजों के जाने से पहले एक एंग्लो–इंडियन न्यायविद ने भारतीयों की ''जीवन की प्राच्य आदतों'' के बारे में निम्नलिखित टिप्पणी की – ''यह (भारत में ब्रिटिश शासन) विदेशी शासकों द्वारा शासन करने के लिए किए गए प्रयोगों का एक विवरण है जो एक अजीब भूमि में विदेशी दौड़, यूरोपीय संस्थानों को जीवन की आदतों के लिए अनुकूल बनाने के लिए, और निश्चित कानूनों को सर्वोच्च बनाने के लिए, जो लोगों को हमेशा मनमाने और अनियंत्रित अधिकार के साथ सरकार से जुड़े हुए हैं। ''
प्राचीन भारत की कानूनी व्यवस्था की सच्ची और सही तस्वीर पाने के लिए हमें मूल ग्रंथों पर जाना चाहिए। पाठक उनसे पता लगाएगा कि भारतीय न्यायशास्त्र कानून के शासन पर पाया गया थाय कि राजा स्वयं कानून के अधीन था यह मनमाना अधिकार भारतीय राजनीतिक सिद्धांत और न्यायशास्त्र के लिए अज्ञात था

और शासन का अधिकार कर्तव्यों की पूर्ति के अधीन था जिसके उल्लंघन के कारण राजशाही का त्याग हुआय न्यायाधीश स्वतंत्र थे और केवल कानून के अधीन थे। प्राचीन भारत में प्राचीनता के किसी भी राष्ट्र का उच्चतम मानक था, जहां न्यायपालिका की क्षमता, सीखने, अखंडता, निष्पक्षता और स्वतंत्रता का संबंध था, और इन मानकों को आज तक पार नहीं किया गया है, भारतीय न्यायपालिका में शीर्ष पर मुख्य न्यायाधीश (प्रादिवीका) की अदालत के साथ न्यायाधीशों का एक पदानुक्रम शामिल था, प्रत्येक उच्च न्यायालय में नीचे के न्यायालयों के निर्णय की समीक्षा करने की शक्ति के साथ निवेश किया जा रहा था, उन विवादों को प्राकृतिक न्याय के उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार अनिवार्य रूप से तय किया गया था जो आज आधुनिक राज्य में न्यायिक प्रक्रिया को संचालित करते हैं : यह कि प्रक्रिया और साक्ष्य के नियम आज अनुसरण करने वालों के समान थे, आपराधिक मुकदमों में अभियुक्त को तब तक दंडित नहीं किया जा सकता जब तक कि कानून के अनुसार उसका अपराध सिद्ध नहीं हो जाता, दीवानी मामलों में मुकदमे में किसी भी आधुनिक मुकदमे की तरह चार चरण होते हैं – वादी, उत्तर, सुनवाई और डिक्री, इस प्रकार के सिद्धांत न्यायिक न्याय के रूप में भारतीय न्यायशास्त्र से परिचित थे, वह सभी परीक्षण, दीवानी या अपराधी, कई न्यायाधीशों की पीठ द्वारा और शायद ही कभी एक न्यायाधीश द्वारा अकेले बैठकर सुने गए, राजा को छोड़कर सभी अदालतों के फरमान तय सिद्धांतों के अनुसार अपील या समीक्षा के अधीन थे, न्यायालय का मौलिक कर्तव्य था कि वह ''बिना पक्ष या भय के'' न्याय करे।

भारतीय न्यायिक प्रणाली का परिचय

अदालतों का पदानुक्रम

भारतीय न्यायपालिका को जमीनी स्तर पर मामलों को विकेंद्रीकृत और संबोधित करने के लिए कई स्तरों में विभाजित किया गया है। मूल संरचना इस प्रकार है:

1. सर्वोच्च न्यायालय: यह देश की सर्वोच्च अदालत है और 28 जनवरी 1950 को गठित किया गया था। यह अपील की उच्चतम अदालत है और उच्च न्यायालय के निर्णयों के मूल मुकदमों और अपीलों दोनों का आनंद लेती है। सुप्रीम कोर्ट में भारत के मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश शामिल हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 124–147 में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार को रखा गया है।

2. उच्च न्यायालय: उच्च न्यायालय राज्य स्तर पर सर्वोच्च न्यायिक निकाय हैं। अनुच्छेद 214 उच्च न्यायालयों के अधिकार का हनन करता है। भारत में 25 उच्च न्यायालय हैं। उच्च न्यायालय सिविल या आपराधिक क्षेत्राधिकार का उपयोग केवल तभी करते हैं जब राज्य में अधीनस्थ अदालतें मामलों की कोशिश करने के लिए सक्षम न हों। उच्च न्यायालय निचली अदालतों से भी अपील कर सकते हैं। भारत के राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और राज्य के राज्यपाल के साथ उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है।

3. जिला न्यायालय: जिला न्यायालय भारत के राज्य सरकारों द्वारा जनसंख्या घनत्व के आधार पर हर जिले या जिलों के ग्रुप के लिए स्थापित किए जाते हैं। जिला न्यायालय उच्च न्यायालयों के प्रत्यक्ष प्रशासन के अधीन हैं और उच्च न्यायालय के निर्णयों से बंधे हैं। हर जिले में आम तौर पर दो तरह की अदालतें होती हैं:

1. दीवानी न्यायालय
2. आपराधिक न्यायालय

जिला न्यायालयों की अध्यक्षता जिला अदालतें करती हैं। अतिरिक्त जिला न्यायाधीशों और सहायक जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति मुकदमें के कार्यभार के आधार पर की जा सकती है। जिला अदालत के फैसले के खिलाफ अपील उच्च न्यायालय में है।

4. लोक अदालत ध ग्राम न्यायालय: ये ग्राम स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय हैं जो गाँवों में वैकल्पिक विवाद समाधान के लिए एक प्रणाली प्रदान करते हैं।

5. न्यायाधिकरण: संविधान सरकार को विशिष्ट मामलों जैसे कर मामलों, भूमि मामलों, उपभोक्ता मामलों आदि के लिए विशेष न्यायाधिकरण स्थापित करने की शक्ति प्रदान करता है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार एक अदालत के अधिकार को संदर्भित करता है जो निचली अदालत द्वारा तय किए गए एक मामले की पुनरावृत्ति ध्समीक्षा करता है। भारत में, अपीलीय क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों दोनों में निहित है। वे निचली अदालतों के फैसलों को या तो खत्म कर सकते हैं या बरकरार रख सकते हैं।

दीवानी न्यायालय

दीवानी न्यायालय अन्य व्यक्तियों और संस्थाओं के खिलाफ व्यक्तियों द्वारा किए गए नागरिक गलतियों के लिए उपचार प्रदान करते हैं। दीवानी मामलों में संपत्ति विवाद से लेकर अनुबंध के उल्लंघन से लेकर तलाक के मामले तक शामिल हैं। जब तक स्पष्ट रूप से या निहित रूप से किसी अन्य कानून द्वारा लागू नहीं किया जाता है, तब तक दीवानी अदालतों के पास नागरिक प्रकृति के सभी सूटों की कोशिश करने का अधिकार क्षेत्र है।

नागरिक प्रक्रिया संहिता 1908 भारत में दीवानी मामलों को संचालित करने के लिए दीवानी अदालतों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती है।

जिलों में दीवानी न्यायालय की पदानुक्रम निम्नानुसार है:

1. जिला न्यायालय: जिला जजों की अदालत किसी जिले की सबसे बड़ी दीवानी न्यायालय होती है। यह न्यायिक और प्रशासनिक दोनों कार्यों का अभ्यास करता है। जिला न्यायाधीश दीवानी और आपराधिक दोनों मामलों की कोशिश करने की शक्तियों को जोड़ती है। इसलिए, उन्हें जिला और सत्र न्यायाधीश नामित किया गया है।

2. उप–न्यायाधीश न्यायालय: यदि सूट के विषय–वस्तु का मूल्य 1 लाख रुपये से अधिक है, तो उप–न्यायाधीश और अतिरिक्त उप–न्यायाधीश अदालत सूट का प्रयास कर सकते हैं।

3. अतिरिक्त उप–न्यायाधीश न्यायालय: यह मुकदमें के कार्यभार के आधार पर बनाया गया है।

4. मुंसिफ न्यायालय: यदि सूट के विषय–वस्तु का मूल्य रुपये 1 लाख या उससे नीचे, मुंसिफ अदालत मुकदमा चलाने के लिए सक्षम है।

आपराधिक न्यायालय विभिन्न आपराधिक न्यायालयों की शक्ति का उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) के तहत किया गया है। सीआरपीसी की धारा 26 के अनुसार, भारतीय दंड संहिता के तहत उल्लिखित किसी भी अपराध की कोशिश की जा सकती है:

1. उच्च न्यायालय

2. सत्र न्यायालय
3. आपराधिक प्रक्रिया संहिता की पहली अनुसूची में निर्दिष्ट कोई अन्य न्यायालय

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक प्राधिकरण

संविधान के अनुच्छेद 141 और 144 में सर्वोच्च न्यायालय को दिए गए अधिकार और अधिकार क्षेत्र को निर्णय लेने और भूमि के कानून को बनाए रखने के लिए दिया गया है। ये लेख पशु कल्याण निर्णयों को उनके बाध्यकारी बल देते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि वे संबंधित अधिकारियों द्वारा उचित रूप से लागू और कार्यान्वित किए जाते हैं। वे सर्वोच्च न्यायालय को निर्देश जारी करने की अनुमति देते हैं और विधायिका में कदम रखने तक कानून में अंतराल भरते हैं।

अनुच्छेद 141

अनुच्छेद 141 यह कहता है कि ''सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र के भीतर सभी अदालतों के लिए बाध्यकारी होगा।''

यह अनुच्छेद अंग्रेजी सिद्धांत का प्रतीक है जो मानता है कि कानून निश्चित, निश्चित, ज्ञात और सुसंगत होना चाहिए। चूंकि सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है और सभी न्यायालय और न्यायाधिकरण इसके निर्णयों से बंधे होते हैं, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय अपने आप में कानून का एक स्रोत बन जाते हैं।

अनुच्छेद 144

अनुच्छेद 144 के अनुसार, ''भारत के क्षेत्र में सभी अधिकारी, नागरिक और न्यायिक, सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।''

सर्वोच्च न्यायालय के पास अवमानना में किसी भी अधिकार को रखने की शक्ति है यदि वे न्यायालय के आदेश की अवहेलना या अवज्ञा करते हैं।

न्यायिक मिसाल का बंधन मूल्य

चूंकि भारत एक सामान्य कानून देश है, इसलिए पहले से ही उच्च न्यायालयों जैसे सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के निर्णय अधीनस्थ और निचली अदालतों के लिए बाध्यकारी हैं, अर्थात अधीनस्थ अदालतें निर्णयों का पालन करने और उन्हें कानून बनाने के लिए बाध्य हैं। मिसाल भारत में कानून का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। न्यायालय पदानुक्रम में विभिन्न अदालतों का बाध्यकारी मूल्य इस प्रकार है:

- भारत के सभी न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय बाध्यकारी हैं। सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालयों, निचली अदालतों या अन्य न्यायिक अधिकारियों के फैसलों से बाध्य नहीं है।
- उच्च न्यायालय के निर्णय सभी अवर न्यायालयों (जब तक वे सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के साथ संघर्ष नहीं करते) पर अपने अधिकार क्षेत्र में बंधे हुए हैं, लेकिन अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर की अदालतों के लिए केवल प्रेरक मूल्य रखता है। एक समान पीठ के निर्णयों के साथ उच्च न्यायालय के निर्णयों के मामले में, मामला उच्च पीठ को भेजा जाता है।
- निचली अदालतें अपने ही राज्यों में उच्च न्यायालयों के फैसलों से बंधी होती हैं। अन्य राज्यों के उच्च न्यायालयों द्वारा निर्णय केवल प्रेरक मूल्य रखते हैं।

जनहित याचिका

भारत में सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाने के लिए जनहित याचिका एक प्रभावी उपकरण है। सामाजिक कार्रवाई मुकदमेबाजी की अमेरिकी परंपरा से प्रभावित, भारत में वंचित और सीमांत समुदायों के कारणों को आगे बढ़ाने के लिए जनहित याचिकाओं का व्यापक रूप से उपयोग किया गया है। अदालत में कार्रवाई का कारण लाने के लिए सामान्य नियम लोको स्टैंडि का नियम है यानी पार्टी को पर्याप्त संबंध होना चाहिए या मामले में पार्टी होने के लिए विशेष नुकसान उठाना चाहिए। जनहित याचिकाओं में, इस नियम में काफी हद तक ढील दी गई है, क्योंकि भारत का कोई भी नागरिक मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर किसी गलत को कम करने के लिए अदालत में कार्रवाई कर सकता है। पशु अधिकारों के समूहों और कार्यकर्ताओं को सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर करने और ध्वनिरहित को आवाज देने की अनुमति देकर पशु संरक्षण के लिए जनहित याचिका एक प्रभावी उपकरण है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में दायर पशु कल्याण से संबंधित कुछ ऐतिहासिक जनहित याचिकाओं में पीपल्स फॉर एथिकल ट्रीटमेंट ऑफ एनिमल्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (जानवरों के संरक्षण और फिल्म बनाने के दौरान होने वाले शोषण के खिलाफ मामला) और जानवरों के मामले शामिल हैं। वेलफेयर बोर्ड ऑफ इंडिया बनाम ए नागराजा और ओआरएस (जल्लीकट्टू नामक एक पारंपरिक बैल–लड़ाई अभ्यास के निषेध के संबंध में एक मामला)।

उच्च न्यायालय

राज्य के शीर्ष पर न्यायपालिका उच्च न्यायालय है। यह रिकॉर्ड की एक अदालत है और किसी भी अदालत या प्राधिकरण के अधीक्षक के अधीन नहीं है, हालांकि इसके फैसले से अपील सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और भारत के राष्ट्रपति के रूप में कई न्यायाधीश शामिल हो सकते हैं। असम के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के लिए संख्या 36 से भिन्न होती है। मुख्य न्यायाधीश न्यायालय के प्रशासनिक कार्यों के प्रभारी होते हैं और अपने साथी न्यायाधीशों के बीच न्यायिक कार्य वितरित करते हैं। उन्हें अपने स्वयं के न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति में भी सलाह दी जाती है। लेकिन अदालत में बैठने के दौरान, उनकी न्यायिक स्थिति किसी भी अन्य न्यायाधीश की तुलना में अधिक नहीं है और उनके निर्णयों को विशेष अपील में किसी भी दो न्यायाधीशों द्वारा उलटा किया जा सकता है, और यदि तीन न्यायाधीशों की पीठ पर बैठे, तो उन्हें अपने सहयोगियों द्वारा खारिज किया जा सकता है। उनका किसी भी न्यायाधीश पर कोई प्रशासनिक नियंत्रण नहीं है और उनकी स्थिति को पहले बराबर के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

उच्च न्यायालय सभी अधीनस्थ न्यायालयों, दीवानी और आपराधिक के निर्णयों से अपील या संशोधन सुनता है। इसके अलावा, यह वैवाहिक, कंपनी और वसीयतनामा मामलों में मूल अधिकार क्षेत्र है। संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा सभी उच्च न्यायालयों पर एक विशेष अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया था, उन्हें नागरिकों के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन और अन्य अधिकारों को रोकने के लिए अधिकार प्रदान किया गया था। इस शक्ति के अभ्यास में, उच्च न्यायालय राज्य को किसी भी नागरिक के अधिकारों के साथ अवैध रूप से हस्तक्षेप करने और पहले से किए गए या पारित किसी भी अधिनियम या आदेश को अमान्य करने से रोक सकता है। यह संसद या राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून को किसी भी नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हुए अमान्य घोषित कर सकता है। अनुच्छेद 266 के तहत उपाय एक बहुत लोकप्रिय उपाय साबित हुआ है और पूरे भारत में नागरिकों द्वारा अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए हर साल कई हजारों याचिकाएं दायर की जाती हैं। अकेले उत्तर प्रदेश राज्य में एक वर्ष में तीन हजार से अधिक

याचिकाएँ दायर की जाती हैं।

प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्च न्यायालय की पीठ में भर्ती आंशिक रूप से बार से और आंशिक रूप से पांच साल से कम के जिला न्यायाधीशों की पदोन्नति से नहीं होती है। उनके कार्यकाल के दौरान, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को कार्यकाल की पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होती है जो न्यायिक स्वतंत्रता की नींव है। एक न्यायाधीश को एक उच्च न्यायालय से दूसरे में स्थानांतरित किया जा सकता है, लेकिन व्यवहार में संबंधित न्यायाधीश की इच्छा के अलावा कोई हस्तांतरण नहीं हुआ है।

न्यायाधीशों की स्वतंत्रता

न्यायिक स्वतंत्रता का सिद्धांत ब्रिटिश शासन से उत्पन्न नहीं हुआ था। जैसा कि मैंने ऊपर दिखाया है, यह प्राचीन भारत में पूरी तरह से समझा और लागू किया गया था। कात्यायन और अन्य सभी कानून–गोताखोरों (जिनके निषेध को ऊपर उद्धृत किया गया है) ने न्यायाधीशों के स्वतंत्र होने और राजा से भी निडर होने के सर्वोच्च महत्व पर जोर दिया। भारत के संविधान ने कार्यकाल की सुरक्षा के अंग्रेजी सिद्धांत को अपनाया, और एक उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को केवल सिद्ध दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पर हटाया जा सकता है, और संसद के प्रत्येक सदन द्वारा दो–तिहाई बहुमत से पारित किए जाने के बाद उनके हटाने के लिए राष्ट्रपति को (अनुच्छेद 124 और 217)।

सर्वोच्च न्यायालय और राष्ट्रीय एकता

1950 का संविधान भारतीय इतिहास में पहली बार पूरे भारत के लिए सर्वोच्च न्यायालय बना। अखिल भारतीय क्षेत्राधिकार वाले इस न्यायालय की स्थापना से गणतंत्र के हर नुक्कड़ पर फैले एक समान कानून के विकास में तेजी आने की संभावना है। अनुच्छेद 141 में कहा गया है कि ''सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होगा।'' यह हमारे सर्वोच्च न्यायालय के विचारों को एक संवैधानिक शक्ति प्रदान करता है। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए न्यायिक प्रक्रिया एक प्रभावी हथियार हो सकती है। इंग्लैंड में कानून न्यायालय अंग्रेजी लोगों के लिए एक आम कानून बनाने के लिए सबसे प्रभावी हथियार थे। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि सुप्रीम कोर्ट अपने फैसलों और राय से, उनके पीछे अनुच्छेद 141 के अधिकार के साथ, पूरे भारत के लिए एक समान कानून स्थापित करने की प्रक्रिया को गति देगा।

न्यायपालिका ने अपनी प्राचीन परंपराओं को बनाए रखा है

स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारतीय न्यायपालिका ने न्यायिक स्वतंत्रता और अखंडता की प्राचीन भारतीय परंपरा को बनाए रखा है। सर्वोच्च न्यायालय ने गति निर्धारित की है और इसकी स्वतंत्रता का रिकॉर्ड दुनिया में किसी से पीछे नहीं है। उच्च न्यायालयों ने भी, पूरी तरह से स्वतंत्रता का एक उच्च स्तर बनाए रखा है, और कार्यकारी के साथ न्याय करने वाले न्यायाधीशों के मामले दुर्लभ हैं, सबसे अधिक प्रशंसा हमारे अधीनस्थ न्यायपालिका–मुंसिफ, दीवानी न्यायाधीशों और जिला न्यायाधीशों को जाना चाहिए। जिन्होंने विभिन्न समुदायों और जातियों के नागरिकों के बीच निष्पक्ष न्याय किया है, और जिनका रिकॉर्ड ब्रिटिश न्यायाधीशों के साथ बहुत अनुकूलता से तुलना करता है, जो हमेशा भारतीय और ब्रिटिश मुकदमों के बीच निष्पक्ष नहीं थे। भारतीय न्यायाधीश बृहस्पति के निषेध के अनुसार रहते हैं कि एक न्यायाधीश को व्यक्तिगत लाभ या पूर्वाग्रह या पूर्वाग्रह के मामलों के बिना निर्णय करना चाहिए और उसके निर्णय पाठ द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार होने चाहिए।

न्यायिक प्रक्रिया की कमजोरी

हमारी न्यायिक प्रक्रिया की बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें सैद्धांतिक पोषण का अभाव है। न्यायविदों की न्यायिक प्रक्रिया पर प्रभाव गहरा और अवचेतन हालांकि गहरा है। एक महान अमेरिकी न्यायाधीश, ओलिवर वेंडेल होम्स ने लिखा, ''समय की महसूस की गई आवश्यकताएं, प्रचलित नैतिक और राजनीतिक सिद्धांत, सार्वजनिक नीति की संस्थाएं, लाभ या अचेतन, यहां तक कि पूर्वाग्रहों को भी जो अपने साथी के साथ न्याय करते हैं, उनके लिए एक बड़ा सौदा है।'' उन नियमों को निर्धारित करने में नपुंसकता की तुलना करें जिनके द्वारा पुरुषों को नियंत्रित किया जाता है। '' यह विचार कि ''वर्तमान नैतिक विचारों और नैतिक रीति–रिवाजों को लगातार सचेत रूप से डुबोया जाता है, हालांकि, शायद ही कभी।'' भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि यह निर्धारित करने में कि मौलिक अधिकार पर कोई प्रतिबंध उचित था, तर्कशीलता का कोई सार नहीं था और यह अपरिहार्य था उस समय की मौजूदा स्थितियाँ, और सामाजिक दर्शन और निर्णय में भाग लेने वाले न्यायाधीशों के मूल्यों का पैमाना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। प्राचीन भारत में न्यायाधीशों को ज्ञान की सभी शाखाओं से अच्छी तरह वाकिफ होना आवश्यक था साथ ही न्यायशास्त्र और सरकार के विज्ञान (धर्म–शास्त्रार्थ कुशालार्थार्थ शास्त्राद्रै) । लेकिन आज के बारे में क्या? क्या कानूनी और सामाजिक दर्शन है? क्या आज भारतीय न्यायाधीशों को तोड़ दिया गया है?

इंग्लैंड, पश्चिमी यूरोप और यू.एस.ए. में, न्यायाधीश और वकील को अपनी सभ्यता के न्यायशास्त्र से निरंतर प्रेरणा और शिक्षा मिली है जो बीस शताब्दियों से विकसित हो रही है। इसी प्रकार, यू.एस. एस। आर। में न्यायिक प्रक्रिया मार्क्सवादी न्यायशास्त्र से पोषण प्राप्त करती है जो निरंतर विकसित हो रही है। लेकिन भारतीय जज या वकील को उनकी प्रेरणा कहां से मिली? अपनी ही सभ्यता के अधिकार क्षेत्र से नहीं। वह रोमन कानून और पश्चिमी न्यायविदों के सिद्धांतों के बारे में कुछ जानता है लेकिन कानून के विकास और अपनी खुद की सभ्यता के न्यायशास्त्र के बारे में बहुत कम। एक भारतीय विश्वविद्यालय में कानून की डिग्री के लिए पाठ्यक्रम में भारतीय न्यायशास्त्र या प्राचीन भारत में राज्य का सिद्धांत या भारतीय कानून का इतिहास शामिल नहीं है। नतीजतन हमारी न्यायिक प्रक्रिया सैद्धांतिक आधारों के बिना या अन्य भूमि में अन्य संरचनाओं का समर्थन करने वाली नींव पर बनाई गई एक इमारत है। अब, पारंपरिक अवधारणा का अर्थ परंपरा के अनुसार एक अवधारणा है। लेकिन कौन सी परंपराः भारतीय या ब्रिटिश या अमेरिकी? लेकिन भारत में जैसा कि अनादिकाल से राज्य में सार्वजनिक क्षेत्र रहा है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्य के वाणिज्यिक उद्यमों की कोई संख्या नहीं है। सरकारी गतिविधियों के भारतीय पारंपरिक अवधारणा से संबंध। सर्वोच्च न्यायालय का अवलोकन किसी ब्रिटिश या अमेरिकी पर नहीं बल्कि किसी भी भारतीय पारंपरिक अवधारणा पर स्थापित किया गया है। फिर हमारे दंड संहिता की नैतिक और सैद्धांतिक नींव विदेशी हैं। एक चित्रण करने के लिए, मनु ने सार्वजनिक चर्चा की। अपराध के लिए दंड में से एक के रूप में निरोधी। 9 इस प्रावधान को सोवियत आपराधिक संहिता द्वारा अपनाया गया हैय 92 लेकिन मैकाले द्वारा मसौदा तैयार भारतीय दंड संहिता इसे पूरी तरह से नजरअंदाज करती है, हालांकि यह कई मामलों में सजा का प्रभावी रूप हो सकता है। जाहिर है कि सोवियत न्यायविदों में भारतीय न्यायशास्त्र की तुलना में भारतीय स्वयं अधिक थे।

भारत में कानूनी और न्यायिक अध्ययन का निम्न स्तर आज एक जरूरी समस्या है। एक ओर, हमारे उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने और राज्य के किसी भी कानून या अधिनियम को इस आधार पर अमान्य घोषित करने की

शक्ति के साथ निवेश किया जाता है कि यह किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का असंवैधानिक या अवैध या प्रतिबंधात्मक है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून का पूरे भारत के क्षेत्र में एक बाध्यकारी वर्चस्व है, और इसकी अपीलीय शक्तियां दुनिया के किसी भी अन्य संघीय न्यायालय की तुलना में व्यापक हैं। संविधान की व्याख्या और आर्थिक प्रगति के साथ कानून के शासन के समायोजन के लिए हमारे न्यायाधीशों को न्यायशास्त्र और सामाजिक विज्ञान के गहन ज्ञान की आवश्यकता है और न्यायिक प्रक्रिया के लिए सामाजिक विकास के कानून को लागू करने की क्षमता है। दूसरी ओर। हमारे विश्वविद्यालयों और विधि महाविद्यालयों में कानूनी शिक्षा का मानक बहुत कम है। एक खराब कानूनी शिक्षा गरीब न्यायवादी और न्यायाधीश बनाती है। उन लोगों की शक्ति और बौद्धिक उपकरणों के बीच वर्तमान असमानता जो हमारे भविष्य के न्यायाधीश होंगे, एक ऐसी समस्या पैदा करते हैं, जिसे राज्य केवल अपनी बुराई पर ध्यान नहीं दे सकते।

भारतीय न्यायपालिका की भावी भूमिका

आने वाली सामाजिक और आर्थिक क्रांति में हमारी न्यायपालिका की क्या भूमिका होगी। न्यायिक प्रणाली निर्वात में संचालित नहीं होती है। न्याय का प्रशासन एक सामाजिक कार्य है और न्यायिक प्रक्रिया बड़ी सामाजिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। इसलिए, कानून की अदालतें सामाजिक उद्देश्यों की अवहेलना या अज्ञानता या ''समय की महसूस की गई आवश्यकताएं'' के रूप में कार्य नहीं कर सकती हैं, जैसा कि श्री न्यायाधीश होम्स ने किया है। सिद्धांत रूप में न्यायपालिका कानून नहीं बनाती है, यह केवल यह बताता है कि कानून क्या है। लेकिन जैसा कि गोएथे ने लिखा, ''जीवन के तथ्य अमूर्त सिद्धांतों से अधिक शक्तिशाली हैं।'' व्यवहारिक रूप से न्यायिक प्रक्रिया शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत की तुलना में असीम रूप से अधिक जटिल है। न्यायाधीश इसकी व्याख्या करते समय कानून बनाने में मदद नहीं कर सकते।

भारतीय संविधान, एक संश्लेषण

भारतीय न्यायपालिका की भूमिका को राष्ट्र के सामाजिक उद्देश्यों से अलग नहीं किया जा सकता है। हमारे संविधान में है, भारतीय लोगों के सामने पश्चिमी और कम्युनिस्ट जीवन शैली, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण, उत्पादन में अराजकता के उन्मूलन और सरकार में लोकतंत्र के संरक्षण–एक शब्द में राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता के संश्लेषण को प्राप्त करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य है। आज ''आर्थिक नियोजन'' और ''राजनीतिक लोकतंत्र'' शब्द तथाकथित लोहे के पर्दे के दोनों किनारों पर स्वीकार किए जाते हैं। हमारा संविधान दोनों के संश्लेषण को प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह संवैधानिक कानून के क्षेत्र में गुटनिरपेक्षता की भावना को दर्शाता है। उद्योग का सामाजिक नियंत्रण भारतीय परंपरा के अनुरूप है।

भारतीय संविधान ने हमारे लोगों के सामने एक बहुत ही महत्वाकांक्षी और कठिन लक्ष्य रखा है। एक संविधान अमूर्त सिद्धांतों का संग्रह नहीं है, न ही यह एक निर्वात में काम करता है। यह जीवन के एक तरीके को दर्शाता है जो एक विशेष लोगों को इसके उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं को महसूस करने में सक्षम बनाता है। यदि यह ऐसा करने में विफल रहता है, तो इसे समझौते से संशोधित किया जाएगा या अन्यथा छोड़ दिया जाएगा। सामाजिक जीवन की बाध्यकारी ताकतें अंत में अप्रतिरोध्य हैं।

न्यायिक समीक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान ने संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की तर्ज पर न्यायिक समीक्षा को अपनाया। भारत के संविधान के अंतर्गत संसद सर्वोच्च नहीं है। इसकी शक्तियां एक तरह से सीमित हैं कि शक्ति केंद्र और राज्यों के बीच विभाजित है।

सके अलावा सर्वोच्च न्यायालय को एक ऐसी स्थिति प्राप्त है जो इसे संसद और राज्य दोनों विधानमंडलों के विधायी अधिनियमों की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान करती है। यह न्यायालय को संविधान के तहत न्यायिक समीक्षा का एक शक्तिशाली साधन प्रदान करता है।

संविधान के राजनीतिक सिद्धांत और पाठ दोनों ने न्यायपालिका को कानून की न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान की है। कानून की न्यायिक समीक्षा की गारंटी देने वाले संवैधानिक प्रावधान अनुच्छेद 13, 32, 131–136, 143, 226, 145, 246, 251, 254 और 372 हैं।

- अनुच्छेद 372 (1) संविधान के पूर्व विधान की न्यायिक समीक्षा स्थापित करता है।
- अनुच्छेद 13 यह घोषित करता है कि कोई भी कानून जो मौलिक अधिकारों के हिस्से के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है, वह शून्य होगा।
- अनुच्छेद 32 और 226 सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों के रक्षक और गारंटर की भूमिका सौंपता है।
- अनुच्छेद 251 और 254 में कहा गया है कि संघ और राज्य कानूनों के बीच असंगति के मामले में, राज्य कानून शून्य हो जाएगा।
- अनुच्छेद 246 (3) राज्य सूची से संबंधित मामलों पर राज्य विधायिका की अनन्य शक्तियों को सुनिश्चित करता है।

विशेषताएं

न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत के औचित्य और उसी पर परिणामी अकादमिक उथल–पुथल के रूप में विवाद से बचने के लिए, न्यायिक समीक्षा की शक्ति को देखना बुद्धिमानी होगी, न कि प्रशासन और कानून के 'न्यायिक नियंत्रण' के रूप में। न्यायिक संरक्षण 'व्यक्ति के खिलाफ शक्ति का दुरुपयोग। सार्वजनिक शक्ति के प्रयोग में विकृति के खिलाफ न्यायिक चुनौती की संभावना प्रशासक के साथ–साथ विधायक को संवैधानिक दिशानिर्देशों और सामान्य कानून सिद्धांतों से बाहर जाने से रोक सकती है।

न्यायिक समीक्षा ने इस तर्क पर अपनी ठोस नींव रखी है कि यह संविधान, संवैधानिकता और कानून का शासन है जो न्यायपालिका द्वारा संरक्षित किया जा रहा है, और यह कि यह न्यायपालिका का संस्थागत वर्चस्व नहीं है, बल्कि यह उस संविधान का है, जिसका न्यायिक समीक्षा द्वारा बचाव किया जा रहा है। सिद्धांत के खिलाफ और सभी तर्कों को अभी तक सुलझाया नहीं गया है, जो सार्वजनिक कानून पर बहस के केंद्र चरण पर कब्जा करना जारी रखता है। हालांकि, तथ्य यह है कि सार्वजनिक शक्ति को यह सुनिश्चित करने के लिए कुछ जांच और संतुलन रखना चाहिए कि वे हैं पार नहीं किया या गाली दी। संवैधानिक सरकार और सीमित सरकार की अवधारणा, न्यायिक समीक्षा के तंत्र के माध्यम से बनी हुई है, न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के बीच संघर्ष को संतुलित करती है। जैसा कि संविधान जैविक है, यह बदलते समय की जरूरतों के अनुकूल रचनात्मक और सार्थक व्याख्या की मांग करता है। न्यायिक समीक्षा की सीमाओं के अनुचित विस्तार के खिलाफ वैध आलोचना के बावजूद, तथ्य यह है कि, यह समाज में परस्पर विरोधी हितों द्वारा बनाए गए संकट के क्षणों पर सुरक्षा वाल्व के रूप में कार्य करता है, ताकि सामाजिक तनाव को कम करने और नागरिक संघर्षों से बचा जा सके। यह समाज द्वारा प्रभावित किए बिना अवैधताओं और अनियमितताओं को अवशोषित करने के लिए सदमे अवशोषक के रूप में कार्य करता है। न्यायपालिका

के लिए यह सुनिश्चित करना है कि वे जो व्याख्याएं दें, वे सार्वजनिक हित में हों और जनता की भलाई के लिए हों। यदि संवैधानिक संतुलन पर कोई न्यायिक हमला होता है, तो ऐसे निर्णयों के परिणामों और संवैधानिक निहितार्थों की मूल्यांकन और आलोचना करने में सक्षम सूचित जनमत द्वारा इसका बचाव किया जाना चाहिए।

समीक्षा करने की शक्ति

अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की तरह, भारत के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त है और इस शक्ति को विशेष रूप से संविधान द्वारा मान्यता दी गई है।

हालाँकि अदालतों के पास न्यायिक समीक्षा की शक्ति है, फिर भी मनमाने ढंग से व्यायाम नहीं किया जा सकता है। यदि संसद की कानून बनाने की शक्ति असीमित नहीं है, तो संसद द्वारा पारित कानूनों की समीक्षा करने की अदालतों की शक्ति भी असीमित नहीं है। राज्य के अन्य अंगों की तरह, न्यायपालिका संविधान से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती है और न्यायाधीश उतने ही होते हैं जितने कि किसी और के संविधान के तहत। वे कानूनों की व्याख्या और अमान्य कर सकते हैं, लेकिन वे स्वयं कानून बनाने के कार्य को नहीं मान सकते हैंय न ही वे संघीय या प्रांतीय विधायिकाओं के अलावा किसी भी व्यक्ति या संस्थान पर उस कार्य को प्रदान कर सकते हैं। न ही अदालतें संवैधानिक बना सकती हैं जो प्रकट रूप से असंवैधानिक है। संप्रभुता न तो संसद में और न ही न्यायपालिका में स्थित है।

डीन रोसको पाउंड द्वारा ''न्यायिक लिंचिंग'' के रूप में न्यायिक कार्यों के साथ किसी भी विधायी हस्तक्षेप की अनुपस्थिति या किसी विशेष निष्कर्ष के लिए आयोजित किसी भी प्रकार के खतरे हालांकि वे किसी के लिए हो सकते हैं।

"संविधान सामान्य साधनों से या तो बेहतर सर्वोपरि कानून है, या यह सामान्य विधायी कृत्यों के साथ एक स्तर पर है, और अन्य कृत्यों की तरह परिवर्तनशील हैं जब विधायिका इसे बदलने की कृपा करेगी। निश्चित रूप से लिखित संविधान तैयार करने वाले सभी लोग उन्हें राष्ट्र के मौलिक और सर्वोपरि कानून के रूप में मानते हैं और इसके परिणामस्वरूप, ऐसी हर सरकार का सिद्धांत यह होना चाहिए कि संविधान में विधायिका का एक अधिनियम निरर्थक है। यह न्यायिक विभाग का कर्तव्य है कि कानून क्या है यह कहने के लिए प्रांत और कर्तव्य है। ''

सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह संसद द्वारा विशेष रूप से न्यायालयों तक पहुंच को प्रतिबंधित करने का संसद का प्रयास है (और प्रक्रियात्मक निष्पक्षता की सामग्री को कुछ हद तक सीमित करने का प्रयास) जिसके कारण न्यायिक समीक्षा की एक प्रणाली विकसित हुई है जो अधिक लचीली है, अधिक मजबूत, और पहले से कहीं अधिक व्यापक।

अनुसंधान से पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान को फिर से लिखने के कार्य को हाथ में लिया है, जो निश्चित रूप से अपने डोमेन के भीतर नहीं है। इसमें जो लिखा नहीं गया है उसे पढ़ने की कोशिश की है। न्यायाधीश संविधान की रक्षा के लिए अपनी शपथ लेते हैं, जैसा कि मूल रूप से लागू नहीं किया गया था, लेकिन जैसा कि समय–समय पर संशोधित किया गया है। इसलिए, किसी भी न्यायालय को संविधान के प्रावधान को असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति नहीं होनी चाहिए और वास्तव में न्यायालयों को एक संविधान संशोधन को हड़ताल करने की शक्ति नहीं है। प्रो. टोपे ने ठीक ही कहा है कि आधारभूत संरचना का सिद्धांत न्यायिक कानून के सिवाय और कुछ नहीं है। संविधान को पराजित करने के लिए संविधान का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

''संविधान में शून्य और गैरकानूनी अधिनियमों का समावेश उन्हें संवैधानिक बनाता है जो कि संविधान के अनुरूप भारतीय कानून की विफलता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है जिसके तहत वह काम करता है।''

न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग भारत के लोगों की ओर से न्यायाधीशों द्वारा किया जाता है। जस्टिस कृष्णा अय्यर ने उपयुक्त टिप्पणी की है कि–

''न्यायिक शक्ति का प्रयोग भारत के लोगों की ओर से अदालतों द्वारा किया जाता है, जब तक कि हम लोग ने उन्हें ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए नियुक्त किया है।''

निष्कर्ष

प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा की अवधारणा हमारी संवैधानिक योजना में निहित है जो कानून और शक्तियों के पृथक्करण के नियम पर आधारित है। इसे हमारे संविधान की मूल विशेषताएं माना जाता है, जिसे संसद की संविधान शक्ति का प्रयोग करके भी निरस्त नहीं किया जा सकता है। यह प्रशासनिक ज्यादतियों के खिलाफ उपलब्ध सबसे प्रभावी उपाय है। जनता के बीच यह सकारात्मक समझ है कि अगर प्रशासन किसी भी कार्य या विवेक शक्ति के तहत कार्य करता है, तो उसे वैधानिक नियमों द्वारा या भारत के संविधान के प्रावधानों के तहत प्रदान किया जाता है। यदि इस विवेक शक्ति के कारण अपने स्कोर का निपटारा करने या किसी निजी लाभ को हासिल करने के लिए विवेक शक्ति का उपयोग करने या विवेक शक्ति का दुरुपयोग करने में विफलता है, तो जनता के सामने केवल विकल्प भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32,136 या अनुच्छेद 226 के तहत न्यायपालिका में जाना है। न्यायिक समीक्षा का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विधायिका द्वारा बनाए गए कानून कानून के शासन के अनुरूप हों। न्यायिक समीक्षा में कुछ अंतर्निहित सीमाएँ हैं। यह प्रशासनिक कार्यों के प्रदर्शन की तुलना में विवादों को स्थगित करने के लिए अधिक अनुकूल है। यह न्यायपालिका के कानून और कार्य को संचालित करने के लिए कार्यकारी के लिए है यह सुनिश्चित करने के लिए कि सरकार भारत के संविधान के प्रावधान के अनुसार अपना कर्तव्य निभाती है।

सन्दर्भ सूची

1. डी.डी. बासु, "लिमिटेड गवर्नमेंट एंड जुडिशल रिव्यु, पेज 69
2. ऐच्छ. बेग, "दी सुप्रीमसी ऑफ दी कंस्टीटूशन", इन इंडियन कंस्टीटूशन : ट्रेंड्स एंड इश्यूज सम्पादित – राजीव धवन एवं ऐलिस जैकब, पेज 121, एन. एम. त्रिपाठी, बॉम्बे, 1978
3. एम. के. भंडारी, "बेसिक स्ट्रक्चर ऑफ दी इंडियन कंस्टीटूशन", पेज 353, दीप एंड दीप पब्लिकेशन, 1993 705
4. अनिरुद्ध प्रसाद, "डेमोक्रेसी, पॉलिटिक्स एंड जुडिशरी इन इंडिया" पेज 131 1983
5. राजीव धवन "दी बेसिक स्ट्रक्चर डॉक्ट्रिन –ए फुटनोट कमेंट" इन इंडियन कंस्टीटूशन –ट्रेंड्स एंड इश्यूज, पेज 178
6. पी.के. त्रिपाठी, "रूल ऑफ लॉ, डेमोक्रेसी एंड फ्रंटियर्स ऑफ जुडिशल एक्टिविज्म" पेज 36, जेआईएलआई 1975
7. आर.सी. एस. सरकार, "जुडिशल रिव्यु ", इन दी फ्रेमवर्क ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स, पेज 112, 1983
8. टी.के. टोपे, "कोंस्टीटूशनल लॉ ऑफ इंडिया", पेज 440, 1982
9. जस्टिस मुखर्जी, "रोले ऑफ दी जुडिशरी इन गवर्नमेंटल प्रोसेस " इन पटना लॉ कॉलेज जर्नल, 1967, संस्करण ग्स्प पेज 41
10. वी.आर. कृष्णा अयर, "लॉ एंड दी पीपल, 1972 पेज 163

11. राम जवाया बनाम पंजाब राज्य, ए आई आर 955 एस सी 549
12. डॉ. हरी चंदः "दी इम्प्लॉइड लिमिटेशंस थ्योरी –ए क्रिटिक",जर्नल ऑफ दी बार कौंसिल ऑफ इंडिया, संस्करण 4 (1–4) 1975